सत्यजीत बल्लूभाई देसाई और अन्य

बनाम

गुजराज राज्य

(क्रिमिनल अपील संख्या 158/2012)

जुलाई 20, 2012

[जी.एस. सिंघवी, ज्ञान सुधा मिश्रा, जे जे.]

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973

एस। 167 आर/डब्ल्यू एस.57 - आरोपी को पुलिस हिरासत में भेजना, उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी को जमानत पर रिहा कर दिए जाने के बाद किसी तीसरे पक्ष के कहने पर शिकायत फिर से शुरू करने पर - पुलिस रिमांड के लिए आदेश देना एक अपवाद होना चाहिए, न कि एक नियम और उसे जाॅंच एजेंसी के लिए मजबूत मामला बनाना आवश्यक है और मजिस्ट्रेट को संतुष्ट करना चाहिए कि पुलिस हिरासत के बिना पुलिस अधिकारियों के लिए आगे की जाॅंच करना असंभव होगा। पुलिस रिमांड की अनुमति को हल्के ढंग से या आकस्मिक रूप से नहीं लिया जा सकता है और वैधानिक प्रावधान का सख्ती से पालन अनिवार्य है।

एस। 167 आर/डब्ल्यू एस.57-पुलिस रिमांड- अभिनिर्धारितः इस मामले में,

अपीलकर्ता की पुलिस रिमांड का ओदश निम्नलिखित कारणों से कायम नहीं रह सकताः (1) नीचे की अदालतों ने इस तथ्य को अनदेखी की है कि शिकायतकर्ता ने दीवानी मुकदमें में कथित आरोपी/अपीलकर्ता के साथ समझौता कर लिया था ओर उसने अपनी शिकायत वापस ले ली थी, जिसे बाद में उस पक्ष के कहने पर पुनर्जीवित किया गया, जिसका शिकायत से कोई लेना-देना नहीं था और (।।) माननीय उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को जमानत दे दी थी। जिसका स्पष्ट रूप से पुलिस रिमांड की मांग करने वाली याचिका पर असर पडा, मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस रिमांड देने के कारणों का खुलासा किया गया। विशेषकर उस मामले में जब आरोपी को उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया हो, रिमांड और अधिक आवश्यक है - भारत का संविधान 1950 के अनुच्छेद 21.

एस। 167 - आरोपी की जमानत उच्च न्यायालय द्वारा मंजूर होने के बाद पुलिस रिमांड-प्रक्रिया- अभिनिर्धारितः जाॅच अधिकारियों के लिए सही कदम उच्च न्यायालय से संपर्क करना चाहिए था क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी को जमानत दिए जाने के बाद पुलिस रिमांड देने की मजिस्ट्रेट की शक्ति समाप्त हो जाएगी - इसलिए, मामले के मौजूदा तथ्यों और विशेषतओं के मद्देनजर उच्च न्यायालय और न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा अपीलकर्ताओं को तीन दिन के लिए भी पुलिस रिमांड की अनुमति देना कानूनी रूप से उचित नहीं था। उच्च न्यायालय और न्यायिक मजिस्ट्रेट

द्वारा पारित आदेश, अपीलकर्ताओं की रिमांड की अनुमति देने के सम्बन्ध में निरस्त किया गया अभ्यास और प्रक्रिया।

एस. 57 डब्ल्यू/एस. 167 सीआरपीसी एवं आर्टिकल .22 (2)-पुलिस द्वारा किसी व्यक्ति को हिरासत में लेना और पुलिस हिरासत में रिमांड की अवधि- विचार किया गया भारत का संविधान, 1950 के-अनुच्छेद 21 और 22 (2)

अपीलकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 406, 420,467,468, 471,504,506(2) और 114 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए शिकायत दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया था कि शिकायतकर्ता के पति और उसके भाईयों की मृत्यु पर, अपीलकर्ता संख्या 1 ने फर्जी व्यक्ति के नाम पर एक फर्जी पावर ऑफ अटाॅर्नी बनाई और उसकी जानकारी के बिना किसी तीसरे पक्ष के पक्ष में उसकी भूमि के संबंध में एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किया। शिकायत एम.केस 1/2004 के रूप में दर्ज की गई। शिकायतकर्ता ने अपीलकर्ता के संख्या 1 के खिलाफ भी एक वाद दायर किया था जिसमें समझौता हो गया था। शिकायतकर्ता और अपीलार्थी संख्या 1 न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश हुए और उनके अनुरोध पर न्यायिक मजिस्ट्रेट ने पुलिस उपाधीक्षक को शिकायत वापस करने का निर्देश दिया। हालाकि, न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश को चुनौती देने वाली एक याचिका जो कि एक अजनबी द्वारा दायर की गई थी, उच्च न्यायालय

द्वारा अनुमति देने के बाद, शिकायत मामला नम्बर 1/2004 पुनर्जीवित हो गई। इसके बाद, अपीलार्थीगण ने उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और उन्हें नियमित जमानत पर रिहा कर दिया गया। इसके 6 दिन बाद डी.एस.पी. ने अपीलार्थीगण की मुकदमा संख्या 1/2004 में सात दिनों की पुलिस रिमांड की मांग करते हुए न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया। न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपीलार्थीगण की तीन दिन की पुलिस हिरासत की अनुमति दे दी। उच्च न्यायालय ने रिमांड के इस आदेश को बरकरार रखा।

कोर्ट ने अपील की अनुमति देते हुए,

अभिनिर्धारितः 1.1, पुलिस हिरासत के लिए आदेश देना एक अपवाद होना चाहिए न कि एक नियम और इसके लिए जाॅंच एजेन्सी को एक मजबूत मामला बनाना होगा और मजिस्ट्रेट को संतुष्ट करना होगा कि बिना पुलिस हिरासत के पुलिस अधिकारियों के लिए अग्रिम अनुसंधान असंभव होगा और केवल उसी स्थिति में पुलिस हिरासत उचित होगी। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि पुलिस हिरासत में निरूद्ध किया जाना सामान्यतः कानून के प्रतिकूल है। दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 167 इस संबंध में स्पष्ट है और अभियुक्त को उन तरीकों से बचाने का उद्देश्य है जो अतिउत्साही और बेईमान पुलिस अधिकारियों द्वारा अपनाये जाते है जो कभी इच्छुक पक्ष के कहने पर भी हो सकते है लेकिन गंभीर

और जघन्य अपराधों की जाॅंच में विधानमण्डल ने सीमित पुलिस हिरासत की अनुमति दी है। {10.ए-सी, डी-एफ}

1.2 यह ध्यान दिया जा सकता है कि भारतीय संविधान के अनच्छेद 22 (2) और धारा 57 सीआरपीसी यह आदेश देते है कि प्रत्येक व्यक्ति जिसे गिरफ्तार किया जाता है और पुलिस हिरासत में रखा जाता है उसे 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को बिना किसी अधिकार के इस अवधि से अधिक की अवधि के लिए पुलिस हिरासत में नहीं रखा जा सकता है। मजिस्ट्रेट, किसी गिरफ्तार व्यक्ति की पुलिस हिरासत की प्रारम्भिक अवधि, जब तक कि उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया जाता, न तो संदर्भित है और न ही मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड आदेश के अनुसरण में है।

वास्तव में मजिस्ट्रेट को दी गई रिमांड की शक्तियाॅं तब लागू होती है जब अभियुक्त को उसके सामने पेश किया जाता है उपशीर्ष (1) धारा 167 के अनुसार, लेकिन पुलिस हिरासत में गिरफ्तारी प्रथम 15 दिन के बाद नहीं दी जा सकती है चाहे किसी मुकदमें का अपराध जघन्य हो या बाद में समान संव्यवहार के अनुक्रम में किया गया, सामने आया हो। {पैरा 11 और 13} {10-एफ-एच; 12-जी-एच; 13-ए}

छगन्ती नारायण सत्यनारायण और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य **1986 (2) एससीआर 1128=एआईआर 2130;** सी.बी.आई. बनाम अनुपम

जे. कुलकर्णी **1992 (3) एससीआर 158=(1992)3 एससीसी 141-निर्भर थे।**

1.3 पुलिस रिमांड की अनुमति देने को हल्के में और लापरवाही से नहीं लेना चाहिए और वैधानिक प्रावधानों का कडाई से पालना की जानी अनिवार्य है। इसके संदर्भ में अपीलार्थीगण के लिए पुलिस रिमांड एक से अधिक कारण से बरकरार नहीं रखा जा सकता है। प्रथम स्थान में निचली अदालतों ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि शिकायतकर्ता ने सिविल वाद में आरोपी अभियुक्त/अपीलार्थीगण के साथ समझौता कर लिया था और अंततः शिकायत वापस ले ली थी। इसलिए न्यायिक मजिस्ट्रेट ने आदेश दिनांक 14.02.2005 द्वारा डी.सी.पी. को 15.02.2005 तक शिकायत वापस करने का उचित निर्देश दिया था लेकिन उच्च न्यायालय ने इस आदेश को तीसरे व्यक्ति के आवेदन पर निरस्त कर दिया जिसका शिकायतकर्ता द्वारा दर्ज कराई गई शिकायत से कोई लेना देना नहीं था, हालांकि अपीलार्थीगण द्वारा उच्च न्यायालय के इस आदेश को चुनौती नहीं दी गई क्योंकि इस कथित आवेदन में उन्हें पक्षकार नहीं बनाया गया गया। मामले के इस पहलु की जाॅच नहीं की जा सकती है। {पैरा 14} {13-बी-एफ}

2.1 उच्च न्यायालय और मजिस्ट्रेट ने उच्च न्यायालय के अपीलकर्ताओं की जमानत आदेश दिनांक 23.03.2011 को नजरअंदाज कर

दिया जिसका पुलिस रिमांड की मांग करने वाली याचिका पर स्पष्ट रूप से प्रभाव पडता है। जब अपीलकर्ताओं को जमानत पर रिहा कर दिया गया, तो यह मजिस्ट्रेट पर निर्भर करता है कि वह तथ्यों परिस्थितियों की सावधानीपूर्वक जाॅंच करे कि क्या यह इतना गंभीर था जो कि पुलिस अधिकारियों ने केवल 6 दिनों के बाद अपीलार्थीगण की पुलिस रिमांड मांग करते हुए आवेदन दायर किया। न्यायिक मजिस्ट्रेट और माननीय उच्च न्यायालय ने कारणों की जाॅंच किए बिना ही अपीलार्थीगण की पुलिस रिमांड की अनुमति देने के लिए एक आकस्मिक और यांत्रिक दृष्टिकोण अपनाया है, इस तथ्य की अनदेखी करते हुए कि उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण को पहले ही जमानत दी जा चुकी है और शिकायत दर्ज कराने वाले के व्यक्ति जिसके साथ विवाद था उससे राजीनामा हो चुका है। इस प्रकार विद्यमान तथ्य और परिस्थितियाॅं प्रथम दृष्टया स्पष्ट रूप से इतनी गंभीर और असाधारण नहीं थी कि पुलिस रिमांड को उचित ठहराया जा सके जिसे उच्च न्यायालय द्वारा नजरअंदाज किया जा सकता था भले ही यह केवल तीन दिन के लिए था क्योंकि इसका असर न केवल व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रभावित करता था जो पहले से ही जमानत पर रिहा था बल्कि मजिस्ट्रेट के उच्च न्यायालय के जमानत आदेश को रद्द करने पर भी होना ही था। {पैरा 15 और 17}{13-एफ-एचः 14-एः 15-डी-एफ}

2.2 इस पर भी जोर दिया जाना चाहिए कि मजिस्ट्रेट द्वारा विशेष

रूप से ऐसे मामलों में पुलिस हिरासत की अनुमति देने वाले कारणों का खुलासा करना चाहिए जब आरोपी को उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया हो, और भी अधिक आवश्यक है कि वैध और पर्याप्त रूप से वजनदार कारण के अभाव में अनुमति नहीं दी जा सकती है। ऐसी हिरासत की मांग करना स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है जिसे सक्षम क्षेत्राधिकार वाली अदालत द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया है। {पैरा 17}{16-ए-सी}

2.3 अपीलार्थीगण की पुलिस हिरासत की मांग करने वाले जाॅंच अधिकारियों के लिए सही मार्ग उच्च न्यायालय के दरवाजे खटखटाना होना चाहिए था क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा आरोपी को जमानत देने के पश्चात् पुलिस रिमांड देने की मजिस्ट्रेट की शक्ति समाप्त हो जाएगी और उस पर कोई भी निर्देश नहीं दिया जाएगा। इस आशय की अनुमति केवल उच्च न्यायालय द्वारा ही दी जा सकती है और मजिस्ट्रेट को जमानत आदेश निरस्त करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है भले ही वह कुछ दिनों की संक्षिप्त अवधि के लिए ही क्यों न हो। {पैरा 17} {पैरा 16-सी-ई}

2.4 मामलों के तथ्यों और विशेषताओं के आधार इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय और मजिस्ट्रेट द्वारा भी अपीलार्थीगण को तीन दिन के लिए भी पुलिस रिमांड की अनुमति देना कानूनी रूप से उचित नहीं था। परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश जो उच्च

न्यायालय और प्रधान सिविल न्यायाधीश एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी द्वारा द्वारा परित किए गये थे, खारिज किये जाते है। {पैरा 18} {17-ए-सी}

केस कानून संदर्भः

1986 (2) एससीआर 1128 निर्भर पैरा 13

1992 (3) एससीआर 158 निर्भर पैरा 13

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील नम्बर 1158 वर्ष 2012.

वर्ष 2011 के एस0सी0आर0एल0ए0 संख्या 810 में गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद के निर्णय और आदेश दिनांक 29.09.2011 से।

अपीलकर्ताओं की ओर से हुजेफा अहमदी, एजाज मकबूल.

प्रतिवादी की ओर से हेमन्तिका वाही

न्यायालय का निर्णय न्यायाधीश ज्ञान सुधा मिश्रा द्वारा अपील स्वीकृत की गई।

2. यहा अपीलार्थीगण ने गुजरात उच्च न्यायालय अहमदाबाद द्वारा विशेष क्रिमिनल आवेदन संख्या 810/2011 के साथ विविधि आवेदन संख्या 11636/2011 में निर्णय और आदेश दिनांक 29.09.2011 पर आपत्ति

जताई। जिसके तहत विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया और इस प्रकार विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश बरकरार रखा गया। जिसमें अपीलार्थीगण के तीन दिन की पुलिस रिमांड की अनुमति उनसे पूछताछ के लिए मुकदमा नम्बर 3/2004 न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी वालोड गुजरात में दर्ज शिकायत संख्या 03/2004 में दी गई, जिसे जाॅच के लिए पुलिस को भेजा गया था, जिसके बाद उक्त शिकायत को तालोद एम. केस सख्या 1/2004 के रूप में दर्ज किया गया था।

3. इससे पहले कि हम अपीलार्थीगण की पुलिस हिरासत की अनुमति देने वाले विवादित आदेश के औचित्य और शुद्धता की जाॅंच करें, प्रासंगिक तथ्यात्मक विवरण दर्ज किए जाने की आवश्यकता है जो खुलासा करता है कि सुरजाबेन नाम की एक महिला बधरसिंह उर्फ बाबरसिंह चैहान की विधवा उम्र लगभग 80 वर्ष ने गुजरात में न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी (जेएमआईसी), वालोड के समक्ष अपीलकर्ताओं के खिलाफ आपराधिक शिकायत दर्ज की जिसका मुकदमा संख्या 03/2004 है जिसमें अन्य बातों के साथ यह आरोप लगाया कि शिकायतकर्ता के पति बधारसिंह उर्फ बाबर सिंह रत्नाजी चैहान की मृत्यु दिनांक 10.06.1967 को हो गई थी और उसकी मृत्यु के बाद और शिकायतकर्ता के पति के भाईयों की मृत्यु के बाद, शिकायतकर्ता का नाम राजस्व रिकाॅर्ड में दर्ज किया

गया। हालांकि जब शिकायतकर्ता ने उपरोक्त भूमि के सम्बन्ध में राजस्व रिकार्ड की एक प्रति प्राप्त की, तो उसे पता चला कि सत्यजीतभाई और बल्लूभाई देसाई ने जालसाजी की और सम्पत्ति मालिक के कहने पर एक फर्जी पावर ऑफ अटार्नी बनाई, जयदीपभाई, रणछोडभाई सोलंकी जो कि एक काल्पनिक व्यक्ति के नाम पर बनाई और फर्जी और मनगढंत पावर आॉफ अटार्नी के आधार पर, उन्होंने शिकायतकर्ता की जानकारी के बिना किसी तीसरे पक्ष के पक्ष में 02.08.2023 को एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने मामलें को जाच के लिए पुलिस को भेज दिया, जिसने इसे तालोद एम.केस. नम्बर 01/004 के रूप में दर्ज किया।

4. शिकायतकर्ता ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ शिकायत दर्ज करने के अलावा अपीलार्थी संख्या 1 के खिलाफ घोषणा, स्थायी निषेधाज्ञा तथा 02.08.2003 को निष्पादित पंजीकृत विक्रय पत्र को निरस्त करने के लिए एक नियमित दीवानी वाद संख्या 15/2004 विद्वान सिविल न्यायाधीश (कनिष्ट खण्ड), वालोड की अदालत में भी संस्थित किया। 02.08.2003 को निष्पादित पंजीकृत विक्रय पत्र को रद्द करना। हालांकि सिविल मुकदमें में अपीलकर्ता संख्या 1 की उपस्थिति पर, अपीलकर्ता संख्या 1 सत्यजीत बल्लूभाई देसाई और शिकायतकर्ता सुरजाबने के बीच एक समझौता हुआ, जिसमें दोनो पक्ष इस बात पर सहमत हुए कि शिकायतकर्ता द्वारा दायर

आपराधिक शिकायत बिना शर्त वापस लिया जाएगा। विद्वान सिविल न्यायाधीश ने उक्त समझौता को स्वीकर कर लिया और समझौते की शर्तों के अनुसार डिक्री निकालने का निर्देश दिया।

5. उपरोक्त समझौते के मद्देनजर, शिकायतकर्ता और अपीलकर्ता संख्या 1 विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, वालोड के समक्ष उपस्थित हुए और आपराधिक शिकायत वापस लेने की प्रार्थना की। पक्षों के अनुराध को देखते हुए न्यायिक दंडाधिकारी ने पुलिस उप अधीक्षक व्यारा को 15 फरवरी 2005 तक शिकायत वापस करने केे निर्देश दिए। हालांकि एक तीसरे व्यक्ति की ओर से इस विवाद में एक अजनबी, अर्थात रणधीरसिंह दीपसिंह परमार, जिसका अपीलकर्ताओं के अनुसार शिकायतकर्ता और अपीलकर्ताओं के बीच विवाद से कोई लेना देना नहीं था, जेएमएफसी के आदेश दिनांक 15 फरवरी 2005 से व्यथित महसूस किया और उसने जेएमएफसी के आदेश को चुनौती देते हुए गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष एक विशेष आपराधिक आवेदन संख्या 918/2007 दायर किया जिसके द्वारा शिकायत मामले में जाॅच का निर्देश दिया गया था उसे वापस लौटने का आदेश दिया था।

6. हालांकि उच्च न्यायालय ने इस आवेदन को स्वीकार करते हुए ख़ुशी व्यक्त की और सुरजाबेन द्वारा दर्ज की गई शिकायत की जाॅच करने का निर्देश दिया। 30 नवम्बर 2007 के उच्च न्यायालय के इस आदेश के

परिणामस्वरूप, आपराधिक शिकायत मामला संख्या 3/2004/तालोद एम.केस 1/2004 इस तथ्य के बावजूद पुनर्जीवित हो गया कि दीवानी न्यायालय के सामने एक समझौता डिक्री तैयार की गई थी, उस सम्पत्ति के संबंध में, जिसके लिए आपराधिक शिकायत दर्ज की गई थी और शिकायतकर्ता ने शिकायत वापस ले ली थी लेकिन उच्च न्यायालय के आदेश से उसे पुनर्जीवित कर दिया गया था। इसलिए, अपीलकर्ताओं को आपराधिक शिकायत में अग्रिम जमानत के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाना पडा, जिसे पुनर्जीवित किया गया और उसे खारिज कर दिया गया, लेकिन बाद में उच्च न्यायालय ने 23 मार्च, 2011 के आदेश द्वारा अपीलकर्ताओं की नियमित जमानत बढा दी। हालांकि, उप अधीक्षक वायरा ने इसके 6 दिन बाद ही 19.03.2011 को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, वालोड न्यायालय, वालोड के एक आवेदन दायर कर शिकायत के आधार पर एम केस संख्या 1/2004 के सम्बन्ध में अपीलकर्ताओं की 7 दिनो की पुलिस हिरासत की मांग की। शिकायतकर्ता महिला सुरजाबेन की शिकायत के आधार पर वालोड पुलिस थाने में भारतीय दण्ड संहित की धारा 406, 420, 467, 468, 471, 504, 502 (2) और 114 के तहत मामला दर्ज किया गया था और वापस ले लिया गया था लेकिन जैसा कि यहा पहले कहा गया है, बाद में इसे पुनर्जीवित किया गया।

7. पुलिस उप अधीक्षक द्वारा तीन दिवस के लिए पुलिस हिरासत की

मांग के लिए पेश आवेदन को प्रधान सिविल न्यायाधीश और न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी वालोद ने आशिंक रूप से अनुमति देते हुए अपीलार्थीयों की तीन दिन के लिए पुलिस हिरासत की अनुमति दी गई, जिसके खिलाफ अपीलार्थीयों ने उच्च न्यायालय की ओर रूख किया, जहाॅ अपीलकर्ताओं के पक्ष में पुलिस हिरासत के आदेश के विरूद्ध रोक लगा दी। हालांकि मामले की जब अन्ततः सुनवाई हुई, तो उच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा, जिसमें शिकायतकर्ता सुरजाबेन द्वारा दर्ज मामले के संबंध में की गई जाच के मद्देनजर अपीलकर्ताओं को तीन दिन की अवधि के लिए पुलिस हिरासत की अनुमति दी गई थी। अंततः तीसरे पक्ष नामित रणधीरसिंह दीपसिंह परमार के कहने पर जाच के लिए मामला पुलिस के सामने आया जो इस विवाद में अजनबी थे।

8 अपीलकर्ताओं ने उच्च न्यायालय और जेएमआईसी द्वारा अपीलकर्ताओं को तीन दिनो की अवधि के लिए पुलिस हिरासत की अनुमति देने के आदेश से व्यथित महसूस करते हुए इस आदेश को इस अपील में अनिवार्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी है कि अपीलकर्ताओं की पुलिस रिमांड पर देने का आदेश गलत है और जाच एजेंसी की ओर से वैध या उचित कारण पर आधारित नहीं है और इसलिए यह अपीलकर्ताओं की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन करता है क्योंकि अपीलकर्ताओं ने कभी

भी पुलिस हिरासत को उचित ठहराते हुए जाॅंच को बाधित करने की कोशिश नहीं की है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि पुलिस हिरासत देना एक अपवाद है न कि नियम और इसलिए जाॅंच प्राधिकरण को आगे की जाच करने के लिए अपीलकर्ताओं को पुलिस हिरासत में लेने के लिए एक मजबूत मामला बनाने की आवश्कयता है और केवल उसी स्थिति में पुलिस हिरासत दिया जाना उचित होगा। अपीलकर्ताओं ने जाॅंच अधिकारी के साथ पुरा सहयोग किया और जमानत मिलने के बाद जब भी आवश्यक हुआ, पूछताछ के लिए उपस्थिति हुए। जैसा कि जाॅंच अधिकारी द्वारा प्रार्थना की गई थी, अग्रिम जाच के बहाने पुलिस हिरासत में भेजने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

9 हालांकि राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने पुलिस द्वारा जाच को फिर से शुरू होने के मद्देनजर अपीलकर्ताओं की पुलिस रिमांड की अनुमति देने वाले जेएमएफसी और उच्च न्यायालय के आदेश का समर्थन किया है।

10 मामले की कानूनी स्थिति और मौजूदा तथ्यों के आलोक में, इसमें शामिल हुए मद्दे पर विचार-विमर्श करने के पश्चात्, हम अपीलकर्ताओं की ओर से उठाई गई दलील में तथ्य पाते है कि पुलिस रिमांड दिया जाना एक अपवाद होना चाहिए, न कि एक नियम और इसके लिए जाच करने वाली एजेंसी को एक मजबूत मामला बनाना होगा और विद्वान मजिस्ट्रेट

को संतुष्ट करना होगा कि पुलिस हिरासत के बिना पुलिस अधिकारियों के लिए अग्रिम जाॅंच करना असंभव होगा और केवल उसी स्थिति में पुलिस हिरासत देना उचित ठहराया जाना चाहिए क्योंकि विशेष रूप से मजिस्ट्रेट स्तर पर अधिकारियों को स्वयं को यह याद दिलाना अच्छा होगा कि पुलिस हिरासत में रखना आम तौर पर कानून के प्रतिकूल है। कानून के प्रावधानों में कहा गया है कि इस तरह की रिमांड/पुलिस रिमांड की अनुमति केवल न्यायिक रूप से जाचे गये कारणों के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा दी गई विशेष परिस्थितियों मे और ऐसे सीमित उद्देश्यों के लिए दी जा सकती है जिनकी मामलें में आवश्यकता हो। आपराधिक प्रकिया संहित 1973 की धारा 167 में इस प्रकिया को स्पष्ट किया गया है और इसका उद्देश्य अभियुक्त को उन तरीकों से बचाना है जो कुछ अतिउत्साही और बेईमान पुलिस अधिकारियों द्वारा अपनाए जा सकते हैं जो कभी-कभी इच्छुक पक्ष के कहने पर भी हो सकता है लेकिन यह उतना ही सत्य है कि पुलिस रिमांड हालांकि, सम्पूर्ण जाच का सबकुछ नहीं है फिर भी विशेष रूप से गंभीर और जघन्य अपराधों की जाच में इसकी प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक है। विधानमण्डल ने भी इस ओर ध्यान दिया और इसलिए, सीमित पुलिस रिमांड की अनुमति दी है।

11 इसलिए, यह ध्यान दिया जा सकता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(2) और सी.आर.पी.सी. की धारा 57 यह आदेश देता है कि

प्रत्येक व्यक्ति जिसे गिरफ्तार किया गया है और पुलिस हिरासत में रखा गया है, उसे गिरफ्तारी के 24 घंटे की अवधि के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा, जिसमें गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट अदालत तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय शामिल नहीं होगा और ऐसे किसी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना उक्त अवधि से अधिक पुलिस हिरासत में नहीं रखा जा सकता है। ये दो प्रावधान स्पष्ट रूप से कानून की मंशा को प्रकट करते हैं इसलिए, मजिस्ट्रेट को परिस्थितियों की न्यायिक जाच करनी होगी और यदि संतुष्ट हो तो आरोपी को पुलिस हिरासत में रखने का आदेश दे सकता है। परिणामी स्थिति यह है कि किसी गिरफ्तार व्यक्ति की हिरासत की प्रारंभिक अवधि प्रारम्भ होती है, जब तक उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया जाता है, न तो मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड के आदेश के संदर्भ में है और न ही उसके अनुसरण में। वास्तव में, मजिस्ट्रेट को दी गई शक्तिया तभी प्रयोग में आती है जब किसी आरोपी को सीआपीसी की धारा 167 की उपधारा (1) के तहत उसके सामने पेश किया जाता है।

12 इस प्रकार न्यायिक मजिस्ट्रेट पहली बार में आरोपी को ऐसी हिरासत में रखने का अधिकार दे सकता है यानी समय समय पर पुलिस या न्यायिक हिरासत में, लेकिन हिरासत की कुल अवधि पन्द्रह दिनों से अधिक नहीं हो सकती है। पन्द्रह दिनां की अवधि के भीतर ऐसी हिरासत

की प्रकृति को पुलिस से न्यायिक या इसके विपरीत बदलने के लिए एक से अधिक आदेश हो सकते है। यदि गिरफ्तार आरोपी को कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, तो उसे एक या अधिक आदेशों द्वारा केवल एक सप्ताह के लिए पुलिस या न्यायिक हिरासत में रखने का अधिकार है लेकिन एक सप्ताह के बाद उसे निकटतम मजिस्ट्रेट के पास अभिलेखों के साथ भेजना चाहिए। जब गिरफ्तार आरोपी को शेष अवधि के लिए मजिस्ट्रेट को प्रेषित किया जाता है अर्थात एक सप्ताह या कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा आदेशित हिरासत के दिनों की संख्या को छोडकर, ऐसी हिरासत के पहले पन्द्रह दिवस की उस अवधि के भीतर पुलिस या न्यायिक हिरासत में आगे की हिरासत को अधिकृत कर सकता है या तो पुलिस हिरासत और न्यायिक हिरासत। पन्द्रह दिवस की पहली अवधि की समाप्ति के बाद जाच की अवधि के दौरान आगे की रिमांड केवल न्यायिक हिरासत मे ही हो सकती है। पहली अवधि के बाद किसी को पुलिस हिरासत में नहीं लिया जा सकता है, यहाॅ तक कि ऐसे मामलों में भी जहा उसके द्वारा कुछ और अपराध या तो गंभीर या अन्यथा किए गए हो यदि वही कार्यवाही बाद के चरण में आता हो लेकिन यह रोक तब लागू नहीं होगी जब वही गिरफ्तार आरोपी किसी अन्य मुकदमें में एक अन्य मामले में शामिल हो।

13 जैसा कि ऊपर उल्लेखित कानूनी स्थिति का दिन-प्रतिदिन की

मजिस्ट्रियल शक्तियों के निर्वहन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत सावधानी से विचार करते हुए, हमने संक्षेप में बताना और स्थापित काननी स्थिति को दोहराना उचित समझा कि जब भी किसी व्यक्ति को सीआरपीसी की धारा 57 के तहत गिरफ्तार किया जाता है तो उसे निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने 24 घंटे के भीतर पेश करना होगा जैसा कि उसमें उल्लेख किया गया है। ऐसे मजिस्ट्रेट के पास मामले की सुनवाई का क्षेत्राधिकार हो भी सकता है और नहीं भी। इस स्थिति को छंगती नारायण सत्यनारायण और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1986 एआईआर 2130)में आगे स्पष्ट किया गया था जहा यह माना गया है कि धारा 167 की उपधारा (1) की शर्त को धारा 57 के साथ पढा जाना चाहिए जो एक पुलिस अधिकारी को किसी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए बिना 24 घंटे से अधिक की अवधि तक बिना वारंट के हिरासत में रखने से रोकता है।इस अपवाद के अधीन कि गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट की अदालत तक जाने तक की या़त्रा करने में लगने वाले समय को 24 घंटे की निर्धारित अवधि से बाहर रखा जा सकात है। चूंकि उपधारा (1) में यह प्रावधान है कि यदि धारा 57 द्वारा निर्धारित 24 घंटे की अवधि के भीतर जाच पूरी नहीं की जा सकती है तो आरोपी को डायरी में प्रविष्ठियों के साथ मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करना चाहिए। यह इस प्रकार है कि पुलिस अधिकारी गिरफ्तार व्यक्ति को अधिकतम 24 घंटे की अवधि तक जा◌ॅच के उद्देश्य से हिरासत में रखने का हकदार है। सी.बी.आई. के

ऐतिहासिक फैसले में सी.बी.आई. बनाम अनुपम जे. कुलकर्णी (1992) 3 एससीसी 141, में अभिनिर्धारित किया गया है कि कानून किसी पुलिस अधिकारी को किसी गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट अदालत तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोडकर 24 घंटे से अधिक समय तक हिरासत में रखने का अधिकार नहीं देता है। धारा 167 की उपधारा (1) इन सभी प्रकिया को शामिल करती है और यह भी बताती है कि पुलिस अधिकारी को आरोपी को निकटतम मजिस्ट्रेट के पास भेजते समय मामले से संबंधित डायरी में प्रविष्ठियों की एक प्रति भी भेजनी चाहिए जैसाकि यहा पहले कहा गया है, किसी गिरफ्तार व्यक्ति की पुलिस हिरासत की प्रारम्भिक अवधि जब तक कि उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया जाता है, न तो संदर्भित है और न ही मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में है। वास्तव में मजिस्ट्रेट को दी गई रिमांड की शक्तियां धारा 167 की उपधारा (1) के अनुसार किसी आरोपी को उसके सामने पेश किए जाने के बाद ही प्रयोग में लाई जाती है लेकिन पहले 15 दिवस की हिरासत की अवधि समाप्त होने के बाद की कोई हिरासत नहीं हो सकती है यहा तक कि ऐसे मामलों में भी जहा कुछ और अपराध या तो गंभीर या अन्यथा उसके द्वारा किए गए है, जोकि वाद में एक ही संव्यवहार के क्रम में सामने आये है।

14 उपरोक्त कानूनी स्थिति के प्रकाश में अपीलकर्ताओं के मामले की

जाच करते समय, यह सीआरपीसी के प्रावधानों से स्पष्ट है कि पुलिस रिमांड देने वाले आदेश को हल्के या लापरवाही से नहीं लिया जा सकता है और वैधानिक प्रावधान का कडाई से पालन अनिवार्य है। इसे ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थीयों को पुलिस हिरासत दिया जाने वाला आदेश बरकरार नहीं रखा जा सकता है। सबसे पहले निचली अदालतों ने इस बात को जरअंदाज किया कि शिकायतकर्ता सुरजाबेन जिसने शिकायत दर्ज करवाई थी ने स्वयं ने शिकायत को आगे नहीं बढाने का फैसला किया क्योंकि उन्होंने सिविल वाद में कथित आरोपी/अपीलकर्ता के साथ समझौता कर लिया था, जो उन्होने उनके खिलाफ दायर किया था और अन्त में शिकायत वापस ले ली। इसलिए न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी ने दिनांक 14.02.2005 को पुलिस उपाधीक्षक को दिनांक 15 फरवरी 2005 तक शिकायत वापस करने का उचित निर्देश दिया लेकिन उसके बाद उच्च न्यायालय को इस आदेश को रद्द करना पडा और एक तीसरे व्यक्ति रणधीर सिंह दीपसिंह परमार के अनुरोध पर एक आवेदन पर विचार करना पडा, जिसका शिकायत से कोई लेना देना नहीं था। सुरजाबेन द्वारा दर्ज की गई याचिका में न तो स्पष्ट है और ना ही तर्कसंगत है, लेकिन अपीलकर्ताओं ने श्री परमार के कहने पर जाच को फिर से शुरू करने की अनुमति देने वाले उच्च न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी हैं क्योंकि उन्हें उक्त आवेदन में पार्टी नहीं बनाया गया था । मामले के इस पहलू की जाच यहा हमारे द्वारा नहीं की जा सकती है।

15 हालाकि, भले ही जाच को फिर से शरू करना सही या गलत था, उच्च न्यायालय और मजिस्ट्रेट ने भी एक महत्वूपर्ण कारक की अनदेखी की, जो 23.03.2011 को अपीलकर्ताओ को जमानत देने का उच्च न्यायालय का आदेश था, जो कि स्पष्ट रूप से पुलिस रिमांड की मांग वाली याचिका पर असर रखता था। जब दिनांक 23.03.2011 के आदेश के तहत अपीलार्थीओं को जमानत पर रिहा कर दिया गया, तो यह मजिस्ट्रेट पर निर्भर था कि वह तथ्यों और परिस्थितियों का सावधानीपूर्वक जाच करें कि क्या यह इतना गंभीर था कि पुलिस अधिकारियों को छ दिनों के बाद अपीलार्थीयों की सात दिवस की पुलिस रिमांड मांग करने वाला आवेदन पेश करने के लिए राजी किया गया जो आवेदन 23.03.2011 को दर्ज हुआ था जिसे प्रधान सिविल न्यायाधीश और न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी वालोड के आदेश दिनांक 31.03.2011 द्वारा अनुमति दी गई, स्पष्ट रूप से यह बिना किसी कारण के समझ से परे है क्योंकि इसका कोई कारण नहीं बताया गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा कानूनी स्थिति को अनदेखा करते हुए इस तरह के पुलिस रिमांड की अनुमति देने के लिए एक बेहद आकस्मिक दृष्टिकोण अपनाया है और फिर उच्च न्यायालय ने भी दो पहलुओं को नजरअंदाज करते हुए इसकी पुष्टि की है, पहला यह है कि शिकायतकर्ता ने हालांकि शिकायत वापस ले ली थी और तीसरे पक्ष अर्थात श्री परमार जो इस मामले से पूरी तरह से असंबद्ध था के कहने पर जाच फिर से शुरू की गई और दूसरी बात यह है कि जिस

मामले में जाच फिर से शुरू की गई थी, उसमें अपीलकर्ताओं को उच्च न्यायालय द्वारा जमानत दे दी गई थी। फिर भी जमानत मिलने के छ दिन बाद ही पुलिस रिमांड मांगी गई। मामले में इन स्पष्ट विसंगतियों के बावजूद, न्यायिक मजिस्ट्रेट ने न्यायिक जाच किए बिना और एक भी परिस्थिति का खुलासा किए बिना कि अनुसंधान में सात दिन के लिए अपीलकर्ताओं की पुलिस रिमांड की आवश्यकता क्यो है, स्वीकार कर लिया, जो तब तक आगे नहीं बढा सका, जब तक उन्हें पुलिस हिरासत में नहीं ले लिया गया, हालांकि उन्हें पहले ही जमानत पर रिहा कर दिया गया था।

16 जब हस्तगत मामले में आरोपी अपीलकर्ता को पहले ही उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था, तो न्यायिक मजिस्ट्रेट को यह सुनिश्चित करना और करना और अत्यन्त आवश्यक और न्यायिक कर्तव्य था कि अपीलकर्ता को अग्रिम अनुसंधान के लिए पुलिस हिरासत/पुलिस रिमांड में लेने की आवश्यकता क्यों थी, विशेष रूप से जब अग्रिम अनुंसधान, शिकायतकर्ता के कहने पर भी नहीं किया गया था, बल्कि एक तीसरे व्यक्ति अर्थात श्री परमार द्वारा किया गया था जिसका अनुसंधान को पुनर्जीवित करने को वैध स्थिति स्वयं स्पष्ट नहीं है। हम अपीलकर्ताओं की ओर से पेश किए गए निवेदन में प्रयास बल पाते है कि पुलिस हिरासत देने की याचिका एक अपवाद होनी चाहिए न कि नियम

और अनुसंधान एजेंसी को अग्रिम अनुसंधान के लिए पुलिस रिमांड की मांग के लिए मजबूत कारण बताना चाहिए, विशेष रूप से उस मामले में जहा कथित आरोपी को जमानत मिल गई थी और विवाद व्यावहारिक रूप से समाप्त हो गया था। जब शिकायतकर्ता ने आरोपी व्यक्तियों के साथ समझौता कर लिया था और बाद में शिकायत वापस ले ली थी, फिर भी एक अजनबी के कहने पर अनुसंधान पुनः शुरू किया गया, विशेष रूप से रणधीर सिंह दीपसिंह परमार जो कि स्वीकृत रूप से एक तृतीय पक्ष है जिसका विवाद से कोई सम्बद्ध नहीं है और उस पर मामले में अनुचित रूचि लेकर अपीलकर्ताओं से पैसे की मांग करने और शिकायतकर्ता की सहमति के बिना जाच का पुनर्जीवित कराने का आरोप है, शिकायतकर्ता जिसने अपीलकर्ताओं के साथ समझौता किया था और शिकायत को पुनर्जीवित करने की मांग नहीं की थी।

17 जो भी हो, तथ्य यह है कि, विद्वान मजिस्ट्रेट और उच्च न्यायालय ने कारणों की जाच किए बिना अपीलकर्ताओं की पुलिस हिरासत अनुमति देने के लिए एक आकस्मिक और यांत्रिक दृष्टिकोण अपराया है, इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया है कि अपीलकर्ताओं को पहले ही उच्च न्यायालय द्वारा जमानत दी जा चुकी है और शिकायत दर्ज करने वाली शिकायतकर्ता सुरजाबेन के साथ विवाद पहले ही सुलझ चुका था। इस प्रकार विद्यमान तथ्य और परिस्थितया प्रथम दृष्टया स्पष्ट रूप से इतनी

गंभीर और असारधारण नहीं थी कि पुलिस हिरासत को उचित ठहराया जा सके, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा नजरअंदाज किया गया, भले ही यह केवल तीन दिन के लिए था क्योंकि इसका असर न केवल वह व्यक्ति जिसे पहले ही जमानत दे दी गई थी उसकी स्वतंत्रता पडता, लेकिन मजिस्ट्रेट ने जमानत देने के उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया, भले ही वह केवल तीन दिनों की अवधि के लिए क्यों न हो। वास्तव में जब आरोपी को उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था, तो शुरू में पुलिस अधिकारियों के लिए और बाद में मजिस्ट्रेट द्वारा यह खुलासा करना और ठोस कारण बताना और भी आवश्यक हो गया था कि आरोपी की पुलिस हिरासत की मांग किए बिना अग्रिम अनुसंधान आगे क्यों नहीं बढ सकता था और अगर किसी भी तरह से गवाहों को प्रभावित करने या सबूतों के साथ छेडछाड के आधार पर पुलिस रिमांड की मांग की गई थी तो यह सीधे तौर पर आरोपी की जमानत रद्द करने का मामला हो सकता था और मजिस्ट्रेट पुलिस अधिकारियों को रद्दीकरण या किसी अन्य उचित निर्देश के लिए उच्च न्यायालय से संपर्क करने का निर्देश दे सकते था। जिस बात पर जोर देने की कोशिश की जा रही है वह यह है कि मजिस्ट्रेट, द्वारा विशेष रूप से ऐसे मामलों में पुलिस हिरासत की अनुमति देने के कारणों का खुलासा करना जब आरोपी को उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया हो, और भी अधिक आवश्यक है कि वैध और संतुष्ट वजनदार कारणों के अभाव में इस तरह की हिरासत की अनुमति

नहीं दी जा सकती है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है जिसे सक्षम क्षेत्राधिकार की अदालत द्वारा जमानत पर रिहा किया गया है। वास्तव में, उच्च न्यायालय द्वारा जमानत दिए गए आरोपी की पुलिस हिरासत की मांग करने वाले अनुसंधान अधिकारियों के लिए सही रास्ता यह होना चाहिए था कि वे उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाए क्योंकि आरोपी को उच्च न्यायालय द्वारा जमानत देने के पश्चात् मजिस्ट्रेट की शक्तियाॅ समाप्त हो जाएगी और कोई भी निर्देश नहीं दिया जाएगा। इस आशय की निर्देश केवल उच्च न्यायालय द्वारा इस आशय में दिए जा सकते है कि उच्च न्यायालय ने आरोपी को जमानत पर रिहा करना उचित माना है, मजिस्ट्रेट को जमानत आदेश खत्म करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है भले ही वह कुछ दिनों की संक्षिप्त अवधि के लिए ही क्यों न हो। हमारी राय में यह दण्ड प्रकिया संहिता के सख्त कानूनी प्रावधानों पर विचार करने वाला एकमात्र उचित कदम है, जिसमें विधानमण्डल ने पुलिस हिरासत की अधिकतम अवधि के रूप में पुलिस स्टेशन से मजिस्ट्रेट तक जाने की अवधि को घटाकर 24 घंटे निर्धारित किया है। क्यांेकि पुलिस हिरासत की अधिकतम अवधि के प्रारम्भिक चरण और न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश से पन्द्रह दिवस से अधिक नहीं होना चाहिए, स्पष्ट रूप से संकेत है कि सख्त न्यायिक जाच के पालन के बिना पुलिस हिरासत की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जिससे यह स्पष्ट है कि इसे बढाने के लिए स्पष्ट और ठोस कारण बताए बिना पुलिस रिमांड

की अवधि बढाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और तब यह और भी अधिक आवश्यक होगी जब पुलिस ऐसे आरोपी के लिए पुलिस रिमांड की मांग करती है जिसे उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया हो। इस प्रकार यह स्पष्ट निष्कर्स है कि आरोपी की पुलिस रिमांड, जिसे जमानत पर रिहा कर दिया गया है, किसी अज्ञात या मामूली कारण से नहीं दी जा सकती है।

18 कानूनी स्थिति के उपरोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए हमारी सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय और न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा मामले में बताये गये तथ्यो और विशेषताओं के मद्देनजर अपीलकर्ताओं को तीन दिनों के लिए पुलिस रिमांड की अनुमति देना कानूनी रूप से उचित नहीं था। परिणामस्वरूप, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश साथ ही प्रधान सिविल न्यायाधीश और न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, वालोड द्वारा पारित दिनांक 31.03.2011 के आदेश को रद्द करते हैं, जिसमें अपीलकर्ताओं को पुलिस रिमांड की अनुमति दी गई है और इस प्रकार अपील स्वीकार की जाती है।

आर.पी. अपील स्वीकृत।

गोविन्दबल्लभपंत

न्यायाधीश,

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम,

क्रम सं. संख्या -1, जयपुर महानगर द्वितीय

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक गोविंद बल्लभ पंत (न्यायिक अधिकारी) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंगेे्रजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।